डॉ० राम नारायण मिश्र
दर्शन शास्त्र विभाग
एस० बी० कालेज
आरा

बी० ए० द्वितीय वर्ष (दर्शन शास्त्र)

ईश्वर की अवधारणा : रेने देकार्त

परिचय :

जगत अथवा इस सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति एवं लयता के विषय में चिन्तन करना सभी दर्शनों के सभी दार्शनिकों का पसंदिदा विषय रहा है। इसमें जगत के कारण एवं संचालक के रूप में ईश्वर को माना गया है।

देकार्त एक ईश्वर वादी दार्शनिक हैं। वे ईश्वर को एक द्रव्य के रूप में स्वीकार कर उसे जगत का निमित्त कारण मानते हैं। कारण दो प्रकार का होता है।-

उपादान कारण - यह वह द्रव्य होता है जिससे किसी वस्तु का निर्माण होता है-

Scanned with CamScanner

उदाहरण के लिए अंगूठी के लिए स्वर्ण या घड़े के मिट्टी।

दूसरा कारण निमित्त कारण - यह वह कारण जिसके द्वारा किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है। उदाहरण के घड़े के निर्माण के लिए कुम्भकार। एवं स्वर्ण अंगूठी के निर्माण के लिए स्वर्णकार।

ईश्वर इस जगत के लिए निमित्त कारण ही है। उपादान कारण नित्य और अनित्य है जो द्रव्य रूप है। ऐसा देकार्त बतलाते हैं।

देकार्त ईश्वर को सिद्ध करने के लिए आगमन मूलक, सत्ता मूलक, कारणता मूलक तथा गति मूलक जैसे तर्क प्रस्तुत करते हैं।

ज्ञाता अथवा आत्मा की अनिवार्य सत्ता सिद्ध करने के उपरांत बाह्य जगत की सत्ता को सिद्ध करने के लिए ईश्वर के अस्तित्व को अनिवार्य रूप से स्वीकार करते हैं।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार देकार्त तत्व-त्रय अर्थात् ईश्वर, चित् और अचित् को सिद्ध करते हैं। ये तीनों तत्व अर्थात् द्रव्य हैं। किन्तु देकार्त की द्रव्य की परिभाषा के अन्तर्गत ये तीनों नहीं आते। देकार्त के अनुसार द्रव्य वह है जिसकी स्वतन्त्र सत्ता हो और जिसके ज्ञान के लिए अन्य वस्तु की अपेक्षा न हो। इस परिभाषा के अनुरूप तो ईश्वर ही एकमात्र द्रव्य हैं, क्योंकि केवल उन्हीं की स्वतन्त्र सत्ता है। फिर चित् और अचित् को, जो दोनों अपनी सत्ता के लिए ईश्वर पर आश्रित हैं, द्रव्य कैसे कहा जाता है? देकार्त इस विषम परिस्थिति से बचने के लिए द्रव्य के दो विभाग कर देते हैं—निरपेक्ष या पर द्रव्य और सापेक्ष या अपर द्रव्य। ईश्वर ही एकमात्र स्वतन्त्र और निरपेक्ष द्रव्य हैं। चित् और अचित् दोनों सापेक्ष द्रव्य हैं, क्योंकि दोनों अपने अस्तित्व के लिए ईश्वर की अपेक्षा रखते हैं। इन दोनों को 'द्रव्य' इसलिए कहा जाता है कि ये दोनों परस्पर-सापेक्ष न होकर केवल ईश्वर-सापेक्ष हैं। चित् और अचित् दोनों परस्पर स्वतन्त्र हैं; यदि वे परतन्त्र हैं तो केवल ईश्वर पर। ईश्वर-परतंत्र होने से उनके 'द्रव्यत्व' की क्षति नहीं होती। इस प्रकार तीन द्रव्य सिद्ध हुए—एक तो ईश्वर जो 'पर द्रव्य' (Absolute Substance) हैं; दूसरा, जीव जो 'चेतन द्रव्य' (Thinking Substance) है; और तीसरा, जड जगत् जो 'विस्तृत द्रव्य (Extended Substance) है।

प्रत्येक द्रव्य के गुण और पर्याय होते हैं। ईश्वर के अनन्त गुण और अनन्त पर्याय हैं। चित् का मूल गुण है चैतन्य और अचित् का मूल गुण है विस्तार। चित् और अचित् को परस्पर-स्वतन्त्र और विलक्षण मानने के कारण, इस द्वैतवाद के कारण, देकार्त को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। यदि चित् और अचित् परस्पर भिन्न और स्वतन्त्र हैं, तो उनका संयोग कैसे हो सकता है? देकार्त ने इस विषय में ईश्वर की शरण ली है। किन्तु ईश्वर भी इस द्वैतवाद के दोषों को मुक्ति नहीं दे सके। पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी द्वैतवादों में यह दोष आता है और कोई भी द्वैतवाद इसका सन्तोषजनक समाधान नहीं कर पाया है। जैन दर्शन के जीव और अजीव; सांख्य के पुरुष और प्रकृति, रामानुज के चित् और अचित्—सभी इस दोष से ग्रस्त हैं। इसका एक ही समाधान है कि इन दोनों को परस्पर-स्वतन्त्र और विलक्षण द्रव्य न मानकर ईश्वर का आभासमात्र माना जाय, और यह समाधान द्वैतवादियों को अमान्य है। फलतः द्वैतवादियों ने इन दोनों के सम्बन्ध के विषय में अपनी-अपनी असङ्गत कल्पनायें की हैं। देकार्त की कल्पना है चिदचित्-संयोगवाद अर्थात् चित् और अचित् में परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का सम्बन्ध।

Scanned with CamScanner

एक की क्रिया से दूसरे में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। क्यों? इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं। देकार्त की एक और असङ्गत कल्पना है कि शरीर की एक विशेष ग्रन्थि (**Pineal Gland**) इन दोनों की, जीव और शरीर की, मिलनशय्या है। जड जगत् एक उद्देश्यहीन यन्त्र है जिसे ईश्वररूपी चेतन चालक चला रहा है। जड में चैतन्य नहीं और चित् में परिमाण या विस्तार या आकार नहीं। पशुओं में चैतन्य नहीं है, क्योंकि देकार्त के अनुसार चैतन्य और विवेक एक ही है। इसलिए जीवित पशु भी यन्त्रवत् है। मनुष्य का शरीर भी यन्त्रवत् है। टूटते हुए यन्त्र की खड़खड़ाहट और मुमूर्षु पशु की चीत्कार में कोई अन्तर नहीं! पशुओं में और मानव-शरीर में स्नायु और मांस-पेशियों के संचालन से गति उत्पन्न होती है, किन्तु मनुष्यों में चैतन्य है, और यही मानव-जीवन की महिमा है। देह का प्रभाव चैतन्य पर और चैतन्य का प्रभाव देह पर क्यों पड़ता है? शरीर पर आघात पहुँचने से चैतन्य लुप्त क्यों हो जाता है और चैतन्य के चिन्ता-ग्रस्त होने से शरीर दुर्बल क्यों होता है? आदि प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं, सिवाय इसके कि ईश्वर की यही इच्छा है कि एक की क्रिया से दूसरे में प्रतिक्रिया हो।

यह है देकार्त के दर्शन का परिचय। पहले कहा जा चुका है कि देकार्त का महत्व उनकी सन्देह-पद्धति और ज्ञाता के अनिवार्य अस्तित्व—इन दो बातों के कारण है। यह दर्शन का मूलाधार है। देकार्त ने यह पक्की नींव डाली है। इस नींव पर उन्होंने जो प्रासाद बनाया, वह ढह चुका है, किन्तु नींव अभी भी वैसी ही स्थित है और दार्शनिक प्रासाद इसी पर बनते-बिगड़ते रहे हैं। देकार्त ने आत्मा की स्वतःसिद्धता और स्वप्रकाशता प्रमाणित करके भी आत्मा का महत्व नहीं समझा। आत्मा अद्वैत तत्व है। यह अद्वैत तत्व ही स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश है। यह बिचारा जीवात्मा क्या स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश होगा! आत्मबहुत्ववाद हास्यास्पद दोष है। इसी प्रकार चित् और अचित् को 'द्रव्य' मानना भी भारी भूल है। यह द्वैतवाद अनेक दोषों का मूल है। अचित् को यन्त्रवत् और निरुद्देश्य समझना तथा पशुओं को अचेतन मानना भी विचित्र है। ईश्वर के लिए दिये गये प्रमाण भी अकाट्य नहीं हैं। आगे चलकर कान्ट ने इन सबका खण्डन किया है।[१] इन सब प्रमाणों से केवल 'ईश्वरविषयक विचार' की सत्ता सिद्ध होती है, स्वयं ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं होती। इनसे यही सिद्ध होता है कि हमारे विचार में ही ईश्वर की सत्ता है—यह सिद्ध नहीं होता कि ईश्वर की वास्तविक सत्ता भी है। यदि मैं विचार करूँ कि मेरी जेब